संजम-सारो

(संयम सार)

मंगल आशीर्वाद :

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती

श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

लेखक :

आचार्य वसुनंदी मुनि

कृति : संजम-सारो (संयम सार)

मंगल आशीर्वाद : प.पू. सिद्धान्त चक्रवर्ती श्वेतपिच्छाचार्य
श्री विद्यानंद जी मुनिराज

कृतिकार : प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्य
श्री वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन : आर्यिका वर्धस्व नंदिनी

संस्करण : प्रथम (सन् 2026)

प्रतियाँ : 1000

ISBN : **978-93-94199-96-5**

मूल्य : 24/- (Not for Sale)

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.)

प्राप्ति स्थल : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति कार्यालय
मो. 9971548889, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली
मो. 9312401976

Visit us @ www.acharyavasunandi.com

संपादकीय

ज्ञप्त्या दृष्ट्या युतं सम्यक् चारित्रं तन्निरूप्यते।
सतां सेव्यं जगत्पूज्यं स्वर्गादिसुखसाधनम्॥

–(त.ज्ञान तरंगिणी, 12/17)

जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से सहित है, सत्पुरुषों के द्वारा सेवनीय है, जगत्पूज्य है और स्वर्गादि के सुख का साधन है, वह सम्यक् चारित्र कहलाता है।

सद्दर्शन-ज्ञानतपोदयाढ्या-श्चारित्रभाजः सफलाः समस्ताः।
व्यर्थाश्चरित्रेण विना भवन्ति, ज्ञात्वेह सन्तश्चरिते यतन्ते॥

–सुभाषित रत्नसंदोह, 242)

जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, तप और दया से सहित होते हुए चारित्र धारण करते हैं, वे सब सफल हैं, तथा जो चारित्र से रहित हैं, वे सब निष्फल हैं; ऐसा जानकर सत्पुरुष चारित्र में यत्न करते हैं।

धनहीनोऽपि सद्वृत्तो याति निर्वाणनाथताम्।
चक्रवर्त्यप्यसद्वृत्तो याति दुःख-परम्पराम्॥

–(सार समुच्चय, 283)

सम्यक् चारित्र का धारक मनुष्य धनहीन होकर भी मोक्ष का स्वामी हो जाता है, और सम्यक् चारित्र से रहित चक्रवर्ती भी दुःखों की सन्तति को प्राप्त होता है।

यदि सम्पूर्ण दिवस आकाश मेघ से आच्छादित हों तो, जिस प्रकार वे दुर्दिन कहलाते हैं उसी प्रकार यदि जीवन में असंयम के श्याम मेघ छाए हों तो वह जीवन भी स्वपर के

लिए मङ्गलकारी नहीं होता। जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात्रि, जल के बिना सरिता, शील के बिना स्त्री, सुसंस्कार के बिना सन्तान, प्रेम व विश्वास के बिना दाम्पत्य जीवन, पुष्पों के बिना वाटिका, सुगन्ध के बिना पुष्प, व्याकरण के बिना वाणी, पण्डितों के बिना सभा, दन्त के बिना हाथी, धर्मोत्सवों के बिना मन्दिर सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार व्रत, संयम या चारित्र के बिना मुनि-जीवन सुशोभित नहीं होता। जीवन में निर्दोष संयम उसे निराबाध रूप से अव्याबाध सुख की ओर गतिमान् करता है।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज कृत **'संजम-सारो'** नामक यह ग्रन्थ 183 गाथाओं में लिपिबद्ध है। यह 'संजमसारो' (संयम-सार) जैन दर्शन की उस मूल चेतना का सशक्त प्रतिपादन है जिसके सद्भाव में ही जीव अनादिकालीन संसार-चक्रमण का नाश करके अपनी शुद्ध स्थिति व शुद्ध स्वभाव को प्राप्त कर सकता है। कायिक नियन्त्रण पुनः वाचनिक नियन्त्रण से गुजरते हुए मानसिक नियन्त्रण तक सर्वसंयम के अन्तर्गत ही उक्त है।

आकाङ्क्षाओं पर विवेक का अङ्कुश, इन्द्रिय-निग्रह, मर्यादित स्वपर आत्महितकारी वाणी, शुद्ध विचार ये सब संयम ही है। संयम जीवन को कठोर नहीं बनाता अपितु उसे अनुशासित व परिष्कृत करता है। जहाँ इच्छाओं का अनियन्त्रित विस्तार मात्र अशान्ति को जन्म देता है, वहीं संयम उस पर अङ्कुश लगाकर आत्मिक सुख, शान्ति व स्थिरता प्रदान करता है। काय का संयम आचरण को पवित्रता प्रदान करता है, वाणी का संयम व्यवहारजगत् में मधुरता प्रदान करता है और विचारों का संयम विकारों से रक्षा करता है।

संयम ही वह ढाल है जिससे आत्मा की ओर जाने वाले कर्म बाणों को रोका जा सकता है, संयम ही वह अस्त्र है जिससे आत्मा में छिपे शत्रुओं को नष्ट किया जा सकता है, संयम ही वह औषधि है जिससे जन्म-जरा-मृत्यु जैसे रोगों का उपचार किया जा सकता है। संयम ही वह जल है जिससे कर्ममल का प्रक्षालन सम्भव है। आचार्य श्री ने स्वयं ग्रन्थ में कहा है-

सलिलवरिसाए हंदि, काणणम्मि उवसमिद-महाणलं व।
उवसमदि संजमेणं, पावगं विसयकसायाणं।।47।।

विषय-कषायों की अग्नि संयम से उसी प्रकार शमित हो जाती है, जैसे जल की वर्षा से वन में महा-अग्नि शमित हो जाती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ "**संजमसारो**" में आचार्य भगवन् श्री वसुनन्दी जी मुनिराज ने संयम की आवश्यकता, दुर्लभता व माहात्म्य के भेद व स्वरूप के साथ सामायिकादि पाँच प्रकार के संयमों की विविध गुणस्थानों में उपलब्धि, पुलाकादि पाँच प्रकार के संयतों के स्वरूप, उनकी लेश्या, गुणस्थान, उपपाद स्थानादि का सूक्ष्म विवेचन किया है। ग्रन्थ के अन्तर्गत संयम को वृद्धिङ्गत करने वाली वा स्थिरता प्रदान करने वाली एवं संयम के प्रतिकूल भावनाओं का भी वर्णन है।

यह ग्रन्थ 'गागर में सागर' की उपमा को सार्थकता प्रदान करता है। ग्रन्थ में किया गया संयम का सूक्ष्म विश्लेषण विद्वत्जनों, संयमीजनों एवं सज्जनों को आनन्द प्रदान करने वाला है। भोगप्रधान संस्कृति में जहाँ असन्तोष और तनाव बढ़ता जा रहा है, वहाँ यह ग्रन्थ मर्यादा व संयम के सौंदर्य का बोध

कराता है। मानव जितना अधिक सुविधा सम्पन्न होता जा रहा है, उसे मानसिक अशान्ति उतनी ही अधिक हो रही है। स्पष्ट है कि अनन्त इच्छाएँ दुःख का कारण हैं और संयम सुख व शान्ति का हेतु है।

ग्रन्थ सम्पादन का उद्देश्य पाठकों को इस अमूल्य ग्रन्थ के अध्ययन, मनन और आचरण की ओर प्रेरित करना है, जिससे संयम जीवन का भार नहीं बल्कि जीवन का शृंगार बन सके। पूज्य आचार्य भगवन् की चरणधूल ही हमारे जीवन की सबसे बड़ी पूंजी है। उनके द्वारा प्रदत्त संयम का पथ हमारे लिए केवल साधना नहीं, बल्कि जीने की कला व जीवन का आधार बन गया है। आचार्य गुरुवर की करुणामयी दृष्टि, संयममय आचरण और शास्त्रनिष्ठ वाणी हमें संयममय जीवन की शिक्षा देती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'संजम-सारो' केवल एक ग्रन्थ नहीं बल्कि आचार्य गुरुवर के निर्मल हृदय का प्रतिबिम्ब है। चारित्र शिरोमणि, तपोमूर्ति, संयम के शिखर पुरुष आचार्य भगवन् जब संयम के विषय में अपनी लेखनी चलाते हैं तब निःसन्देह वह ग्रन्थ जीवन्त रूप में संयम की शिक्षा देने वाला और उसकी ओर प्रेरित करने वाला होता है।

आचार्य भगवन् ने सम्यग्दर्शन को विस्तार से प्ररूपित किया तो वह 'सम्मत्त-सारो' के रूप में उद्घाटित हुआ, ज्ञान के विषय का उल्लेख 'णाण-सारो' के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ और सम्यक् चारित्र का विवेचन 'संजम सारो' के रूप में प्रस्तुत है। आचार्य भगवन् द्वारा शताधिक प्राकृत ग्रन्थों का लेखन विद्वज्जनों के लिए मानो शोध का विषय बन गया कि एक साधक तपस्या में निरत है, आचार्य के रूप में महासंघ

के अनुशासक हैं, पञ्चाचार का पालन करने व शिष्यों को उसका पालन कराने में संलग्न हैं, देशभर में विहार कर तीर्थयात्रा, तीर्थ निर्माण, जीर्णोद्धार, पञ्चकल्याणक, धर्मोपदेश इत्यादि के माध्यम से जिनशासन प्रभावना में रत हैं, समाजादि के मार्गनिर्देशक हैं, वे इतने ग्रन्थों का लेखन कब व कैसे कर लेते हैं; किन्तु जो इसके प्रत्यक्षदर्शी हैं वे उनकी स्वाध्याय में लगन, अध्ययनशीलता, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगिता, श्रुतभक्ति को देखकर स्वयं को धन्य अनुभव करते हैं मानो पञ्चमकाल में भी श्रुतकेवली के चरणों में आश्रय पाया हो। आचार्य भगवन् की जिनभक्ति, गुरुभक्ति व प्रवचन भक्ति नमस्करणीय व अनुकरणीय है।

प्रस्तुत ग्रंथ **''संजम-सारो''** अर्थात् (संयम सार) के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। जन-जन के श्रद्धापुञ्ज परम पूज्य प्राकृतभाषा चक्रवर्ती, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी महाराज का संयम, तप, ज्ञान व साधना का सौरभ सहस्रों वर्षों तक विश्व को सुरभित करता रहे। गुरुवर श्री को आरोग्य लाभ हो एवं अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करें। परम पूज्य गुरुवर श्री के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!

श्री शुभ मिति फाल्गुन शुक्ल पंचमी **ॐ अर्हं नमः**
श्री वीर निर्वाण संवत् 2552 **–आर्यिका वर्धस्व नंदिनी**
वार-रविवार 22.2.2026
सिद्धक्षेत्र पटना (श्री सुदर्शन स्वामी मोक्षस्थली)

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	गाथा सं.	पृ.सं.
1	मङ्गलाचरण	1-2	1
2	ग्रन्थ लेखन प्रतिज्ञा	3	1
3	गुरुकृपा से ग्रन्थलेखन	4-9	2
4	ग्रन्थ शोभा	10-13	3
5	ग्रन्थकार विनम्रता	14	4
6	शुद्धात्मध्यान कैसे?	15-18	4
7	मनुष्यभव बिना संयम नहीं	19-20	5
8	संयम बिना आत्महित नहीं	21	6
9	संयम किसके लिए आवश्यक	22	6
10	संयम हेतु योग नियन्त्रण आवश्यक	23	6
11	दीर्घ संसारी के संयमभाव भी नहीं	24	6
12	सुखाकाङ्क्षी के संयम नहीं	25	7
13	निगोद के दु:ख	26	7
14	सम्यक्त्वादि ग्रहण में असमर्थ जीव	27	7
15	देश व सकल संयम के अपात्र	28	8
16	तिर्यञ्चों के कदाचित् देशव्रत	29	8
17	सकल-संयम के अपात्र	30	8
18	संयम पात्रता	31-36	8
19	वैराग्य बिना संयम भारभूत	37	10
20	संयमियों के मध्य, संयम का अग्राहक मूर्ख	38-39	10
21	दृष्टान्त संयम की दुर्लभता	40-43	11
22	रत्नत्रय बिना स्वानुभूति नहीं	44	11
23	भवभ्रमण के हेतु-राग व द्वेष	45	12
24	संयम की स्थिरता किससे?	46	12
25	संयम से विषय-कषायादि शमित	47	12
26	रत्नत्रय से मोक्षफल	48	13
27	सम्यक्त्व बिना संयम मोक्षकारक नहीं	49	13
28	सम्यक्त्व बिना संयम नहीं	50	13
29	आत्मगुणप्रकाशक-संयम	51	13
30	संयम का लक्षण	52-53	14

31	व्यवहार संयम	54-55	14
32	व्यवहार संयम के पर्यायवाची	56	15
33	निश्चय संयम	57	15
34	निश्चय संयम के पर्यायवाची	58	15
35	प्राणी व इन्द्रिय संयम	59	15
36	सकल व विकल संयम	60	16
37	उपेक्षा व अपहृत संयम	61	16
38	अपहृत संयम के भेद	62-64	16
39	सतरह प्रकार का संयम	65-68	17
40	संयम मार्गणानुसार भेद	69	18
41	असंयम ग्रहण क्यों	70	18
42	असंयमी व अविरत सम्यग्दृष्टि	71	19
43	देशसंयम कहाँ	72	19
44	संयमासंयम	73	19
45	देशव्रती, सकलसंयमी नहीं	74-75	19
46	बारह व्रत	76	20
47	देशव्रती की ग्यारह प्रतिमाएँ	77-78	20
48	देशव्रत किसके?	79	21
49	पञ्चविध सकल संयम कहाँ?	80	21
50	महाव्रती कौन?	81-82	21
51	सामायिक व छेदोपस्थापना चारित्र	83-86	22
52	परिहार विशुद्धि संयम	87	23
53	परिहारविशुद्धि संयम किसके	88-89	23
54	परिहार विशुद्धि संयम के साथ विरोध	90	24
55	परिहारविशुद्धि कहाँ	91	24
56	परिहारविशुद्धि संयम काल	92-93	24
57	परिहारविशुद्धि संयत के लेश्या	94	25
58	सूक्ष्मसाम्पराय संयम	95	25
59	सूक्ष्मसाम्पराय किसके	96	25
60	सूक्ष्मसाम्पराय संयत के लेश्या	97	25
61	यथाख्यात संयम	98	26
62	यथाख्यात संयम का काल	99-100	26
63	यथाख्यात संयम किसके	101	27

64	संयम प्राप्ति योग्य काल	102-104	27
65	संयम के भेद	105	28
66	पुलाक	106	28
67	बकुश	107-108	28
68	कुशील	109	29
69	प्रतिसेवना कुशील	110	29
70	कषाय कुशील	111	29
71	निर्ग्रन्थ	112	29
72	निर्ग्रन्थों के भेद	113	30
73	स्नातक	114	30
74	किनके कौन सा संयम?	115-116	30
75	संयतों के उत्कृष्टत: ज्ञान	117-118	31
76	संयतों के जघन्यतम ज्ञान	119	31
77	संयतों के लेश्या	120-121	32
78	संयतों के उपपाद स्थान	122-124	32
79	संयम का फल समाधि	125	33
80	सल्लेखना कैसे?	126	33
81	संयम विशुद्धि में कारण-भावना	127-142	33
82	शुद्धोपयोग में शुद्धात्मानुभूति	143	37
83	अशुभ भावना सहित संयत की दुर्गति	144	37
84	अशुभ भावना के भेद	145	37
85	कन्दर्पी भावना	146-147	38
86	सम्मोही भावना	148	38
87	आसुरी भावना	149-150	38
88	किल्विष भावना	151-153	39
89	अशुभ भावना युत का उपपाद कहाँ?	154-155	39
90	संयम माहात्म्य	156-177	40
91	अन्तिम मङ्गलाचरण	178-181	45
92	ग्रन्थकार की लघुता	182	46
93	ग्रन्थ-प्रशस्ति	183	46

संजम-सारो

(संयम-सार)

मङ्गलाचरण

संजमफल-जुत्ताणं, सव्वसिद्धाणं सयलजिणाणं च।
साहूण सम्मत्ताइ-धम्मस्स सरस्सदीइ णमो॥1॥

संयम के फल से युक्त सभी सिद्ध व सकल जिनवर अर्थात् अरिहन्तों को नमस्कार हो। सर्व साधु (आचार्य, उपाध्याय, साधु), सम्यक्त्वादि धर्म व सरस्वती को नमस्कार हो।

अरिहादी णवदेवा, गुरुपरंपराए सव्वा सूरी।
मम गुरु-विज्जाणंदं, सूरिं णमंसामि भत्तीइ॥2॥

अरिहन्त प्रभु आदि नव देवता (अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिनचैत्यालय), गुरु परम्परा के सभी आचार्य (चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज, महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज, आध्यात्म योगी आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज, भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज) एवं मेरे गुरु आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थ-लेखन प्रतिज्ञा

संजमफलपत्तीए, सुइरं विमलसंजमं पालेदुं।
संजमसारं वोच्छे, पुव्वाइरियाणुसारेणं॥3॥

दीर्घकाल तक निर्मल संयम के पालन के लिए व संयम के फल की प्राप्ति के लिए पूर्वाचार्यों के अनुसार मैं (आचार्य वसुनन्दी मुनि) संयमसार नामक ग्रन्थ को कहता हूँ।

गुरुकृपा से ग्रन्थलेखन

अक्कपयासो अक्कं, विणा चंदेण सीयल-जुण्हा जह।
सिप्पीइ विणा मुत्ता, वइस्साणरेण उण्हत्तं॥4॥

चेयणं विणा जीवो, णह-मवगाहणत्तं गदी धम्मं।
अधम्मं ठिदी केवल-णाणं विणा ण जिणो जह तह॥5॥

कम्मविणासं मुत्ती, संजमं विणा सुद्धप्पणुभूदी।
रयणत्तयं सिवपहो, गुरुकिवं विणा गंथलिहणं॥6॥ (तिगं)

जिस प्रकार सूर्य के बिना सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा के बिना शीतल चाँदनी, सीप के बिना मोती, अग्नि के बिना ऊष्णता, चेतना के बिना जीव, आकाश के बिना अवगाहनत्व, धर्म के बिना गति, अधर्म द्रव्य के बिना स्थिति, केवलज्ञान के बिना जिनेन्द्र भगवान, कर्मविनाश के बिना मुक्ति, संयम के बिना शुद्धात्मानुभूति एवं रत्नत्रय के बिना मोक्षमार्ग सम्भव नहीं है, उसी प्रकार गुरुकृपा के बिना ग्रन्थ लिखना भी सम्भव नहीं है।

अंबमंजरिं पस्सिय, कोइला किण्हपज्जणणं केकी।
आयण्णिय वीणाए, महुरसंगीद-झुणिं मिगा य॥7॥

विउलधणं अवयच्छिय, दरिद्दा मादुं पस्सित्तु बाला।
जहेच्छभोयणं लहिय, छुहाउरा णंदं पावंति॥8॥

णो कंखंता ताणं, सुहपवित्ती पारब्भदि सहजेण।
तहेव गुरुपसादेण, हिदत्थं तप्परो लिहेदुं।।9।। (तिगं)

जिस प्रकार आम के बौंर को देखकर कोयल, काले बादलों को देखकर मयूर, बीन की मधुर सङ्गीत ध्वनि को सुनकर हरिण, विपुल धन को प्राप्तकर निर्धन व्यक्ति, माता को देखकर बालक, यथेच्छ भोजन को प्राप्तकर क्षुधातुर आनन्द को प्राप्त करते हैं, न चाहते हुए भी उनकी शुभप्रवृत्ति सहज ही प्रारम्भ हो जाती है, उसी प्रकार अपने गुरु की कृपा से सर्वहित के लिए मैं शास्त्र लिखने में तत्पर हुआ हूँ।

ग्रन्थ शोभा

मुत्तासोहं धारदि, अक्ककिरणेहि जह तह जलबिंदू।
वज्जस्स कच्चखंडं, संजदेसु संजम-सारो।।10।।

जिस प्रकार सूर्य की किरणों से जल की बून्द मुक्ता (मोती) की शोभा को धारण करती है, काँच खण्ड हीरे की शोभा को धारण करता है उसी प्रकार संयमीजनों में यह ग्रन्थ 'संयमसार' शोभा को धारण करने वाला है।

गंधोदगं सुपुज्जं, जिणाहिसेगस्स उवजुत्तणीरं।
तित्थगब्भसमये वरिसिद-रयणाणि महप्प-जुदाणि।।11।।

णिग्गंथाणं करतलगद-सामण्णभोयणं पि अमियं व।
जह तह सोहेज्ज किं ण, गंथो मोक्खकंखि-करेसुं।।12।। (जुम्मं)

जिस प्रकार जिनेन्द्रप्रभु के अभिषेक के लिए उपयुक्त नीर गन्धोदक पूज्य हो जाता है, तीर्थङ्कर के गर्भ के समय में बरसे

रत्न माहात्म्य से युक्त होते हैं, निर्ग्रन्थ गुरुओं के करतल में रखा सामान्य भोजन भी अमृत के समान हो जाता है उसी प्रकार यह ग्रन्थ मोक्ष-आकाङ्क्षियों के हाथों में सुशोभित होगा।

संजमसारो सद्दिट्ठि-अप्पणाणि-करगद-गंथो इमो।
देदुं केवलणाणं, समत्थो चिय परंपराए॥13॥

सम्यग्दृष्टि अल्पज्ञानी के हाथ में आया यह 'संयमसारो' ग्रन्थ परम्परा से उसे केवलज्ञान देने में समर्थ होता है।

ग्रन्थकार विनम्रता

गुरुकिवाइ पययमि सुदकिड्डं कुणंतो गंथलेहणस्स।
दुग्गम-कज्जं करिदुं, बालेणं सायर-तरणं व॥14॥

बालक के द्वारा सागर तैरने के समान श्रुत क्रीडा करते हुए ग्रन्थ लेखन करने के दुर्गम कार्य करने का मैं (आचार्य वसुनन्दी मुनि) प्रयत्न करता हूँ।

शुद्धात्मध्यान कैसे?

गंधेण विणा पुप्फं, मुत्तं सिप्पी य महुरिमं इक्खू।
सीयलत्तं च णीरं, उण्हत्तं विणा अग्गी जह॥15॥

आदवं विणा अक्को, उज्जोद-मिंदू पयासं दीवो।
मूलं विणा य रुक्खो, जोदिं णयणं जलं सिंधू॥16॥

अमुत्तित्तं विणा खं, पाणं पाणी दयं विणा धम्मो।
घिदं दुद्धं च दंसणविसुद्धिं विणा तित्थपइडी॥17॥

सम्मत्तं वेरग्गं, विणा सण्णाणं संजमो कमसो।
संजमं विणा तवो य, तं विणा सुद्धप्पज्झाणं।।18।। (चउक्कं)

जिसका प्रकार गन्ध के बिना पुष्प, मोती के बिना सीप, मधुरता के बिना गन्ना, शीतलता के बिना नीर, ऊष्णता के बिना अग्नि, आतप के बिना सूर्य, उद्योत के बिना चंद्रमा, प्रकाश के बिना दीप, जड़ के बिना वृक्ष, ज्योति के बिना नेत्र, जल के बिना सागर, अमूर्तिकपने के बिना आकाश, प्राण के बिना प्राणी, दया के बिना धर्म, घृत के बिना दूध व दर्शनविशुद्धि के बिना तीर्थङ्कर प्रकृति नहीं होती, उसी प्रकार सम्यक्त्व के बिना सम्यग्ज्ञान, वैराग्य के बिना संयम, संयम के बिना तप और उस तप के बिना शुद्धात्मध्यान नहीं होता।

मनुष्य भव बिना संयम नहीं

खवगसेणिं केवलं, अजोगावत्थं विणा सिद्धत्तं।
सयलसंजमो सुपत्त-दाणं विणा कम्मभूमिजं।।19।।

खइय-सम्मत्तं विणा, वज्ज-उसह-णाराय-संघडणं च।
पिदरेणं सिसु-जम्मं, संजमो विणा णरभवं तह।।20।। (जुम्मं)

जिस प्रकार क्षपकश्रेणी के बिना केवलज्ञान, अयोग केवली अवस्था के बिना सिद्धत्व, कर्मभूमिज बिना सकलसंयम व सुपात्रदान, वज्रऋषभनाराचसंहनन के बिना क्षायिक सम्यक्त्व, माता-पिता के बिना शिशु का जन्म सम्भव नहीं है, उसी प्रकार मनुष्य भव के बिना संयम सम्भव नहीं है।

संयम बिना आत्महित नहीं

सुपुण्णजदणेणं सग-सत्तीइ लहेदि मण-वय-कायेहि।
सद्दिट्ठी दु संजमं, जं ण अप्पहिदं विणा तेण॥21॥

सम्यग्दृष्टि जीव पूर्ण यत्न से, मन, वचन, काय से शक्तिपर्वूक संयम को प्राप्त करता है, क्योंकि उसके बिना आत्महित नहीं हो सकता।

संयम किसके लिए आवश्यक

भव-सरीर-भोयादो, परमविरत्तो जो अवि भव्वुल्लो।
कंखदि अप्पहिदं तस्स संजमो दु परमावसियो॥22॥

जो भव्यजीव संसार-शरीर-भोगों से परमविरक्त है और आत्महित की आकाङ्क्षा करता है, उसके लिए संयम परम आवश्यक है।

संयम हेतु योग नियन्त्रण आवश्यक

जणदि संजमो मण-वय-कायाण णिजंतंणेण विणा णो।
घिद-सक्करा-चणगेहि, विणा मोदग-णिम्माणं णो॥23॥

मन, वचन, काय के नियन्त्रण के बिना संयम उसी प्रकार उत्पन्न नहीं हो सकता जैसे घी, शर्करा व बेसन के बिना लड्डू नहीं बनाया जा सकता।

दीर्घ संसारी के संयमभाव भी नहीं

वेगुव्विय-तणु-धरणे, सुह-विकिरियाविहीण-णेरइया व।
दीहसंसारिजीवा, भाविदुं संजम-भावण-मसक्का॥24॥

जिस प्रकार वैक्रियक शरीर धारण करने पर भी नारकी शुभ विक्रिया करने में समर्थ नहीं होते, उसी प्रकार दीर्घ संसारी जीव संयम की भावना भाने में भी अशक्य होते हैं।

सुखाकाङ्क्षी के संयम नहीं

कंखदि देहसुहं जो, पदं पदिट्ठं इत्थिं भोयाइं।
तस्स कहं संजमो य, सीयलत्तणुभूदी णणले॥25॥

जो शारीरिक सुख, स्त्री, पद, प्रतिष्ठा, भोगादि की आकाङ्क्षा करता है, उसके संयम कैसे हो सकता है? उचित ही है—अग्नि में शीतलता की अनुभूति नहीं होती।

निगोद के दु:ख

कुणंति जम्मं मरणं, णिगोदे णंताणंत-संसारी।
एगुस्सासम्मि अट्ठदसवारं असंजमेणं दु॥26॥

असंयम के कारण अनन्तानन्त संसारी जीव, निगोद में एक श्वांस में अट्ठारह बार जन्म-मरण करते हैं।

सम्यक्त्वादि ग्रहण में असमर्थ जीव

वियलिंदिया असण्णी-पणिंदिया गहिदुं सम्मत्ताइं।
णियमादो असमत्था, एइंदिय-थावरजीवा वि॥27॥

एकेन्द्रिय स्थावर जीव, विकलेन्द्रिय व असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव, सम्यक्त्वादि ग्रहण करने में नियम से असमर्थ होते हैं।

देश व सकल संयम के अपात्र

चउविहसुर-णेरइया, भोगकुभोगभूमिया तिक्काले।
देससंजमं सयलं, लहिदुं पि असमत्था सया हि।।28।।

चार प्रकार के देव, नारकी जीव, भोगभूमिज व कुभोगभूमिज तीनों कालों में सकलसंयम व देशसंयम को प्राप्त करने में भी सदा असमर्थ ही होते हैं।

तिर्यञ्चों के कदाचित् देशव्रत

कयाइ पुव्वपुण्णेण, कम्मभूमिजो सण्णी चिय तिरियो।
देसव्वदं हि सक्को, गहिदुं ण महव्वदं कया वि।।29।।

पूर्व पुण्य से कर्मभूमिज सञ्ज्ञी तिर्यञ्च जीव कदाचित् देशव्रत को ग्रहण करने में तो शक्य हैं किन्तु महाव्रत ग्रहण करने में कदापि शक्य नहीं हैं।

सकल संयम के अपात्र

कम्मभूमिजणरा अवि, णीयकुलुप्पण्णो जदि वियलंगो।
गहिदुं सयलसंजमं, असमत्थो खइयसम्मत्तं।।30।।

कर्मभूमिज मनुष्य भी यदि नीच कुल में उत्पन्न हों, विकलाङ्ग हों तो वे सकल संयम व क्षायिक सम्यक्त्व को ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं।

संयम पात्रता

पुव्वभवेसु हिदत्थं, भाविदा संजमभावणा जेहिं।
ते सुणिमित्तं पाविय, संजमं गहेज्ज जदणेणं।।31।।

जिन भव्यजीवों ने स्वहित के लिए पूर्वभवों में संयम की भावना भायी, वे श्रेष्ठ निमित्त को प्राप्त कर यत्नपूर्वक संयम ग्रहण करते हैं।

जे कंखंति पदिट्ठा-पदित्थी-सुदत्थ-वाहण-भवणाणि।
विउल-इंदियसुहं ते, सुमिणे वि ण संजमं गहंति।।32।।

जो प्रतिष्ठा, पद, स्त्री, पुत्र, धन, वाहन, भवन, विपुल इन्द्रिय सुख की आकाङ्क्षा करते हैं वे स्वप्न में भी संयम ग्रहण नहीं कर सकते।

पजहित्तु कच्चखंडं, वज्ज-संपत्तीव विसं अमियस्स।
कीकररुक्खं विहाय, चंदणतरु-पत्तीव णिच्चं।।33।।

जीवविराहण-मुज्झिय, कुव्वेदि अच्चासण्ण-भव्वुल्लो।
जिणाराहणं गुरुवासणं सल्लेहणं भावेदि।।34।। (जुम्मं)

काँच खण्ड को छोड़कर हीरा, विष छोड़कर अमृत, कीकर के वृक्ष को छोड़कर चन्दन के वृक्ष की प्राप्ति के समान अति आसन्न भव्यजीव, जीव की विराधना (हिंसा) को छोड़कर जिनाराधना, गुरूपासना करता है एवं उत्तम सल्लेखना की भावना करता है।

बंधणबद्धो पंछी, उड्डीदुं कंखदि जह मुत्त-णहे।
कणयपंजरे वि णेव, उत्तमं भोयणं भोयाणि।।35।।

णिल्लुंछिय सद्दिट्ठी, तह सहजुवलद्ध-विसय-भोयाइं।
सव्वसेट्ठ-जदणेणं, पप्पोदि संजमं विरागी।।36।। (जुम्मं)

जिस प्रकार बन्धन में बन्धा हुआ पक्षी मुक्त आकाश में उड़ने की आकाङ्क्षा करता है, स्वर्ण पिंजरे में भी उत्तम भोजन

व भोगों की आकाङ्क्षा नहीं करता, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि वैरागी सहजोपलब्ध विषयभोगों का त्यागकर यत्नपूर्वक सर्वश्रेष्ठ संयम को प्राप्त करता है।

वैराग्य बिना संयम भारभूत

संजमो भारभूदो, वेरग्गेणं विणा वि मूढाणं।
वहंत-दुही छुहोव्व दु, खज्जसामग्गि-मजाणंतो॥37॥

वैराग्य के बिना मूर्खों के लिए संयम उसी प्रकार भारभूत होता है जिस प्रकार खाद्य सामग्री को न जानते हुए उसे वहन करते हुए क्षुधातुर दुःखी होता है।

संयमियों के मध्य, संयम का अग्राहक मूर्ख

जो वराग-पिवासिदो, सरसीतडे वसंतो सुइरंतं।
पिवदि अण्णाणेण णो, सो दुही कहं हु मूढो णो॥38॥

जह तह णिवसंतो वदि-महव्वदीण णिअरम्मि सुइरंतं।
णेव सज्झायणेही, ण गहदि वदं किं मूढो णो॥39॥ (जुम्मं)

जैसे जो बेचारा प्यासा व्यक्ति दीर्घकाल तक जलाशय के तट पर रहता हुआ अज्ञानपूर्वक जल नहीं पीता और दुःखी होता है तो वह मूर्ख कैसे नहीं है? उसी प्रकार व्रती-महाव्रतियों के समूह में दीर्घकाल तक निवास करता हुआ स्वाध्यायप्रेमी नहीं होता, व्रतों को ग्रहण नहीं करता तो वह मूर्ख कैसे नहीं है? अर्थात् वह मूर्ख ही है।

दृष्टान्त-संयम की दुर्लभता

स-चुलसीदिलक्ख-दार-वट्टरायभवणे पवेसदारं।
घत्तंतो जम्मंधो, भमदि उग्घाडिदमिगं णवरि।।40।।

पययेदि उग्घाडिदुं, पत्तेयं संघट्टणेणं किण्णु।
पहुच्चित्तु उग्घाडिद-दार-णियडे कंडुयणादो।।41।।

ण आमुसंतो दारं, अग्गे गच्छीअ ण लहीअ तम्हा।
राय-पासादस्स बहु-विहवं सेट्ठभोयं सोक्खं।।42।।

मिच्छंधो तह ण लहदि, संजमसुहं विसयेसु रंजंतो।
अणादीदो भमंतो, चुलसीदि-लक्खजोणीसुं हु।।43।। (चउक्कं)

चौरासी लाख द्वार से युक्त गोल राजभवन में प्रवेश द्वार को ढूण्ढ़ता हुआ एक जन्मान्ध व्यक्ति भ्रमण कर रहा है किन्तु विशेषता यह है कि मात्र उनमें एक ही द्वार खुला हुआ है। वह धक्का देकर प्रत्येक द्वार को खोलने का प्रयत्न करता है किन्तु खुले हुए द्वार के निकट पहुँचकर खुजली होने से द्वार को स्पर्श किए बिना ही आगे बढ़ गया। इसलिए उसने राजप्रासाद के बहुत वैभव, श्रेष्ठ भोग व सुख को प्राप्त नहीं किया। उसी प्रकार अनादिकाल से चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुए मिथ्यात्व से अन्धा जीव विषयों में रञ्जायमान होता हुआ संयम सुख को प्राप्त नहीं करता।

रत्नत्रय बिना स्वानुभूति नहीं

विणा रयणत्तयेणं, ण को वि संजमी सगप्पणुभूदो।
जह तह णो चक्की णव-णिहिं विणा चउदसरयणं च।।44।।

रत्नत्रय के बिना कोई भी संयमी स्वात्मानुभूति उसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता जिस प्रकार नवनिधि, चौदह रत्न के बिना चक्रवर्ती नहीं होता।

भवभ्रमण के हेतु-राग व द्वेष

गगणे उड्डीदुं बेपक्खोव्व णदिं पवहिदुं दुतडोव्व।
चलिदुं णरस्स पदं व, भवं भमिदुं रायदोसं च॥45॥

जिस प्रकार आकाश में उड़ने के लिए दो पङ्ख, नदी के प्रवाहित होने के लिए दो तट और चलने के लिए मनुष्य के दो पैर होते हैं, उसी प्रकार संसार में भ्रमण करने के लिए राग और द्वेष हैं।

संयम की स्थिरता किससे?

रुक्खस्स चिय मूलं व, भवणस्स आहारोव्व थिरिमाए।
संजम-थेज्जस्स दु सज्झाओ वेरग्गं भत्ती य॥46॥

जैसे वृक्ष की स्थिरता के लिए जड़ है, भवन की स्थिरता के लिए नींव है उसी प्रकार संयम की स्थिरता के लिए स्वाध्याय, वैराग्य और भक्ति है।

संयम से विषयकषायादि शमित

सलिल-वरिसाए हंदि, काणणम्मि उवसमिद-महाणलं व।
उवसमदि संजमेणं, पावगं विसय-कसायाणं॥47॥

विषय-कषायों की अग्नि संयम से उसी प्रकार शमित हो जाती है, जैसे जल की वर्षा से वन में महाअग्नि शमित हो जाती है।

रत्नत्रय से मोक्षफल

रयणत्तय-वरिसाए, संतप्पा गुणभरिदो सिवफलिदो।
पसंता हरिद-पुप्फिद-फलिद-पुढवीव वरिसाए य॥48॥

जिस प्रकार वर्षा से पृथ्वी प्रशान्त, हरित, पुष्पित और फलित हो जाती है उसी प्रकार रत्नत्रय की वर्षा से आत्मा शान्त होती है, गुणों से भर जाती है और मोक्षफल से युक्त होती है।

सम्यक्त्व बिना संयम मोक्षकारक नहीं

सम्मत्तेण विणा णो, संजमो हु मोक्खकारणं कया वि।
सुहजोगाण बलेणं, देज्ज अब्भुदयसुहं मेत्तं॥49॥

सम्यग्दर्शन के बिना संयम कदापि मोक्ष का कारण नहीं है। वह शुभयोगों के बल से मात्र अभ्युदय सुख दे सकेगा।

सम्यक्त्व बिना संयम नहीं

जत्थ संजमो दु तत्थ, सम्मत्तं सण्णाणं वेरग्गं।
सम्मत्तहीणो दव्वसंजमो ण गणिज्जदि जमेसु॥50॥

जहाँ संयम है वहाँ सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान और वैराग्य भी है। सम्यक्त्व से हीन द्रव्य संयम, संयमों में परिगणित नहीं होता।

आत्मगुणप्रकाशक-संयम

संजमो सुहद-णिहीव, णिच्चचिंत-चिम्मय-विहव-दायगो।
संजमो सुगुणपुंजो, अप्पगुण-पयासगो णिच्चं॥51॥

संयम सुखद निधि के समान है, संयम नित्य (शाश्वत) अचिंत्य चिन्मय वैभव को देने वाला है, संयम श्रेष्ठ गुणों का पुञ्ज है एवं नित्य आत्म-गुणों का प्रकाशक है।

संयम का लक्षण

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती चिय सुहभावेहिं।
भवतरुं णिल्लूरिदुं, तिक्खकुहाडोव्व संजमो दु॥52॥

अशुभ से निवृत्ति और शुभभावपूर्वक शुभ में प्रवृत्ति संयम है। संसार रूपी वृक्ष को जड़ से उखाड़ने के लिए संयम तीक्ष्ण कुठार के समान है।

सुह-सुद्ध-पवत्तिं संजमं संहरिदुं जम्मं मरणं च।
विणा णिरत्थगं तवो, झाणं पाणोव्व संजमीण॥53॥

शुभ व शुद्ध में प्रवृत्ति संयम है। जन्म व मरण को नष्ट करने के लिए यह संयम संयमियों के प्राण के समान है। संयम के बिना तप व ध्यान निरर्थक ही है।

व्यवहार संयम

सम्मत्तेणं सह वद-समिदि-आइ-पालणं जमरूवेण।
मणवयणकाय-गुडणं, पंचिंदियणिंदिय-जयणं च॥54॥

पुढवी-आइ-छक्काय-जीवाणं रक्खणं च ववहारो।
संजमो सोसिदुं भव-सिंधुं पचंड-मत्तंडोव्व॥55॥ (जुम्मं)

सम्यक्त्व के साथ यमपूर्वक व्रत, समिति आदि का पालन करना, मन, वचन, काय पर नियन्त्रण करना, पाँच इन्द्रिय व अनीन्द्रिय (मन) पर विजय प्राप्त करना एवं पृथ्वी आदि

षट्काय जीवों की रक्षा करना व्यवहार संयम है। यह संयम संसार सागर को अवशोषित करने के लिए प्रचण्ड सूर्य के समान है।

व्यवहार संयम के पर्यायवाची

अववादो ववहारो, अवहदसंजमो देसेग-चागो।
सरागचरियं पि सुहोवजोगो णेयो एगट्ठो।।56।।

अपवाद, व्यवहार नय, अपहृत संयम, एकदेश त्याग, सराग चारित्र और शुभोपयोग, ये सभी एकार्थवाची जानने चाहिए।

निश्चय संयम

सव्वाहिलासा-रहिदो, विअप्प-हीणो रयणत्तयमइए।
अप्पे णिट्ठिदो जत्थ, तत्थ णिच्छय-संजमो जाण।।57।।

जहाँ मुनिराज सभी अभिलाषाओं से रहित, विकल्प हीन हैं, अपनी रत्नत्रयमय आत्मा में निष्ठित हैं, वहाँ निश्चय संयम जानना चाहिए

निश्चय संयम के पर्यायवाची

णिच्छयो सव्वचागो, परमुवेक्खासंजमो उस्सग्गो।
वीयराय-चरियं तह, सुद्धोवओगो एगट्ठो।।58।।

निश्चयनय, सर्व त्याग, परम उपेक्षा संयम, उत्सर्ग, वीतराग चारित्र और शुद्धोपयोग, ये सभी एकार्थवाची हैं।

प्राणी व इन्द्रिय संयम

पाणि-इंदिय-संजमो, पाणिपीडा-परिहारो पढमो य।
पाणिंदिय-विसयाणं, णिग्गहो इंदिय-संजमो हि।।59।।

(प्राणी संयम व इन्द्रिय संयम के भेद से संयम दो प्रकार का है।) प्राणी पीड़ा का परिहार प्रथम प्राणि-संयम है और पञ्चेन्द्रिय विषयों का निग्रह इन्द्रिय संयम है।

सकल व विकल संयम

सयल-वियल-भेयादो, बेविहो वि संजमो जिणुद्दिट्ठो।
मुणीण सयल-संजमो, देसवदीण वियलो णेयो॥60॥

सकल संयम व विकल संयम के भेद से जिनेन्द्र भगवान के द्वारा दो प्रकार का संयम कहा गया है। मुनियों के सकल संयम एवं देशव्रतियों के विकल संयम जानना चाहिए।

उपेक्षा व अपहृत संयम

उवेक्खा-अवहदाणं, भेयादो वि बेविहो णादव्वो।
रायदोसणहिसंगो, उवेक्खा-संजमो मुणीणं॥61॥

उपेक्षा संयम और अपहृत संयम के भेद से भी संयम दो प्रकार का जानना चाहिए। राग और द्वेष रूप चित्तवृत्ति का न होना मुनियों के उपेक्षा संयम जानना चाहिए।

अपहृत संयम के भेद

उक्किट्ठ-मज्झ-जहण्ण-अवहदो तिविहो च णेयो पढमो।
बज्झजंतु-उवागदे, णियं रक्खिय जम-पालणं च॥62॥

उक्किट्ठ-अवहदो पुण, पमज्जिदूणं मिदु-उवयरणेणं।
जंतूणं परिहरणं, मज्झिम-अवहदो बोहव्वो॥63॥

अण्णाण-उवयरणाण, इच्छुगस्स जहण्ण-अवहदो जाण।
सोवयरणं च अवहद-संजदो विवरीयो इदरो॥64॥ (तिगं)

अपहृत संयम तीन प्रकार का जानना चाहिए—उत्कृष्ट, मध्यम व जघन्य। बाह्य जन्तुओं के आने पर स्वयं की रक्षा कर संयम का पालन करना प्रथम उत्कृष्ट अपहृत संयम है। मृदु उपकरण से प्रमार्जन कर जन्तुओं का परिहार करना मध्यम अपहृत संयम जानना चाहिए। अन्य उपकरणों की इच्छा रखने वाले के जघन्य अपहृत संयम जानना चाहिए। उपकरण सहित अपहृत संयम और इससे विपरीत अर्थात् उपकरण से रहित के उपेक्षा संयम होता है।

सतरह प्रकार का संयम

पणथावराण बे-ते-चउ-पणक्खाण अजीव-रक्खणं च।
अप्पडिलेहणं च दुप्पडिलेहण-मुवेक्खावहदो॥65॥

मणवयकायसंजमो, इत्थं सत्तरसविहो संजमो वि।
णियप्प-कल्लाणत्थं, मुणेदव्वो जिणसत्थेहिं॥66॥ (जुम्मं)

पाँच स्थावर (पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक) की रक्षा करना, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय एवं पाँच इन्द्रिय जीवों की रक्षा करना, अजीवकाय की रक्षा करना अर्थात् सूखे तृण आदि का छेद न करना, अप्रतिलेखन, दुष्प्रतिलेखन, उपेक्षा संयम, अपहृत संयम, मन, वचन व काय संयम इस प्रकार निजात्म कल्याण के लिए जिनशास्त्रों से सतरह प्रकार का संयम जानना चाहिए।

असंजम-देससंजम-सामाइय-छेदोवट्ठावणा य।
परिहारविसुद्धि-सुहुम-संपराय-जहक्खादा तह॥67॥

सत्तविहो णादव्वो, संजम-मग्गणाणुसारेणं खलु।
मिच्छो असंजदो चिय, उप्पज्जेज्जा चदुगदीसुं॥68॥ (जुम्मं)

संयम मार्गणा के अनुसार सात प्रकार का संयम जानना चाहिए–असंयम, देशसंयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यात संयम। मिथ्यादृष्टि असंयमी चारों गतियों में उत्पन्न हो सकता है।

संयम मार्गणानुसार भेद

संजमो सत्तविहो दु, इत्थं संजममग्गणणुसारेण।
जहवि पंचहा वि जहाजोग्गं सरूवं परूवेमि॥69॥

इस प्रकार संयम मार्गणा के अनुसार संयम सात प्रकार का है। यद्यपि संयम पाँच प्रकार का होता है, अतः उसके यथायोग्य स्वरूप का मैं यहाँ प्ररूपण करता हूँ।

असंयम ग्रहण क्यों

असंजमो ण संजमो, मग्गणाए गवेसेज्ज जीवा य।
संजम-मग्गणाइ तं, गणिज्जदि असंजमो णादुं॥70॥

असंयम, संयम नहीं है। मार्गणा से जीवों की खोज की जाती है। अतः जीव को जानने के लिए संयम मार्गणा में असंयम परिगणित है।

असंयमी व अविरत सम्यग्दृष्टि

अणंताणंत-जीवा, असंजमी सव्वत्थ सया णियमा।
आतुरिय-गुणट्ठाणं, सव्व-असंजमी अविरदा य॥71॥

अनन्तानन्त जीव सर्वत्र सर्वदा असंयमी हैं। चौथे गुणस्थान तक सभी जीव नियम से असंयमी और अविरत होते हैं।

देशसंयम कहाँ

देससंजमो पणमं, णो पुण्ण-संजमो ण असंजमो य।
संजमासंजमो सुह-सण्णा मिस्सगुणट्ठाणं व॥72॥

देशसंयम, यह पाँचवाँ गुणस्थान है। यहाँ न संयम है, न असंयम है, संयमासंयम गुणस्थान है। 'संयमासंयम' यह शुभ सञ्ज्ञा मिश्रगुणस्थान के समान है।

संयमासंयम

विरदो थूलपावादु, किण्णु णेव सुहुमपावादु तम्हा।
सत्थगा संजमासंजम-सण्णा पंचम-ठाणस्स॥73॥

यह स्थूल पाप से विरक्त है, किन्तु सूक्ष्म पाप से विरक्त नहीं है अतः पञ्चम गुणस्थान की संयमासंयम सञ्ज्ञा सार्थक है।

देशव्रती, सकल संयमी नहीं

इंदिय-अणिग्गहाणो, अचागादो तह सुहुमपावाणं।
देसवदं पालंतो, णो सयलसंजमी वदी सो॥74॥

इन्द्रिय का निग्रह नहीं होने से, सूक्ष्म पापों का त्याग नहीं होने से, देशव्रत का पालन करते हुए वह देशव्रती, सकलसंयमी नहीं होता।

बारस-अविरदीसु-मिग-अविरदि-विरदो एयारसजुदो य।
देससंजमी तम्हा, ण सयलसंजमी सिद्धंते।।75।।

देशव्रती बारह अविरतियों में से एक अविरति से विरक्त होते हैं, ग्यारह अविरति से युक्त होते हैं इसलिए सिद्धान्त में वह सकल संयमी नहीं है।

बारह व्रत

पालेदि देसव्वदी, पणणुव्वद-सहिदसत्तसीलवदं।
तिगुणव्वदं चत्तारि-सिक्खावदं चिय सीलवदं।।76।।

देशव्रती पाँच अणुव्रत सहित सात शीलव्रत पालन करते हैं। तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, ये सात शीलव्रत हैं।

देशव्रती की ग्यारह प्रतिमाएँ

दंसणाइ-एयारस-पडिमा देसव्वदीण विसोहीइ।
वदविड्ढीरूवा इग-देसमोक्खमग्गी सो।।77।।

देशव्रतियों के विशुद्धिपूर्वक व्रत वृद्धि रूप दर्शन प्रतिमा आदि ग्यारह प्रतिमाएँ होती हैं। वह देशव्रती एकदेश मोक्षमार्गी जानना चाहिए।

दंसण-वद-सामाइय-पोसहा सचित्त-रत्ति-भुत्तीणं।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमदि-उद्दिट्ठ-चागो तह।।78।।

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तत्याग, रात्रिभुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग– ये श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ हैं।

देशव्रत किसके?

मणुजा तिरिया मेत्तं, सक्कंति ओग्गहिदुं देसव्वदं।
बंधंते देवाउं, सण्णी पज्जत्त-सद्दिट्ठी॥79॥

मात्र मनुष्य व तिर्यञ्च ही देशव्रत ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। सञ्ज्ञी पर्याप्त सम्यग्दृष्टि देवायु का बन्ध करते हैं।

पञ्चविध सकल संयम कहाँ?

सयलसंजमो पणहा, पमत्तादु आअजोगकेवली य।
सव्वसंजमीणं सय, जहाजोग्गं संविदिदव्वो॥80॥

प्रमत्त गुणस्थान से अयोग केवली गुणस्थान तक सभी संयमियों के सदा यथायोग्य पाँच प्रकार का सकल संयम जानना चाहिए।

महाव्रती कौन?

पंचमहव्वद-समिदी, अक्ख-जयो तिगुत्ती सडावसियं।
सत्तविसेसगुणा जग-वंदणीय-सयलसंजमीण॥81॥

जगत् वन्दनीय सकल संयमियों के पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पञ्चेन्द्रिय जय, तीन गुप्ति, षटावश्यक व सात विशेष गुण होते हैं।

सामाइय-संजमी दु, अट्ठोत्तर-वीस-मूलगुण-सहिदा।
चउतीस-उत्तरगुणा, पालंति सत्ति-विसोहीए।।82।।

सामायिक संयमी अट्ठाईस मूलगुण से सहित होते हैं एवं अपनी शक्ति से विशुद्धिपूर्वक चौंतीस उत्तरगुणों का पालन करते हैं।

सामायिक व छेदोपस्थापना चारित्र

सामाइयं तहा छेदोवट्ठावणं पमत्तविरदादु।
आअणिवट्टी दु जत्थ, उदयेदि संजलणकसायं।।83।।

जहाँ सञ्ज्वलन कषाय का उदय रहता है ऐसे प्रमत्तविरत गुणस्थान से अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक सामायिक चारित्र के साथ छेदोपस्थापना चारित्र पाया जाता है।

अंतोमुहुत्तयालो, समत्तभावरूव-सामाइयस्स।
छेदोवट्ठावणस्स, वि उहयो हि सयल संजमीणं।।84।।

समत्वभावरूप सामायिक चारित्र का एवं छेदोपस्थापना चारित्र का काल अन्तर्मुहूर्त रहता है। ये दोनों ही चारित्र सकल संयमियों के रहते हैं।

वदेसु दोसजादेसु, पडित्ता सामाइय-संजमादो।
छेदोवट्ठावणं च, पावदि पुण पुण सामाइयं।।85।।

व्रतों में दोषों के उत्पन्न होने पर सामायिक संयम से गिरकर छेदोपस्थापना संयम प्राप्त करते हैं और पुनः पुनः सामायिक संयम प्राप्त करते हैं।

उहयो संजमो सया, जीवस्स उवयारी वरमित्तं व।
सामइय-गंभीरं व, छेदुवट्ठावण-चंचलं व॥86॥

दोनों ही संयम जीव के श्रेष्ठ मित्र के समान सदा उपकारी हैं। सामायिक संयम गम्भीर मित्र के समान और छेदोपस्थापना संयम चञ्चल मित्र के समान है।

परिहार विशुद्धि संयम

सव्वसावज्जादो य, पाणिवहादु णिवत्ती परिहारो।
तेण जुदो संजमो हि, संजमो परिहार-विसुद्धी॥87॥

सर्वसावद्य से और प्राणिवध से निवृत्ति परिहार है। उस परिहार से युक्त संयम ही परिहारविशुद्धि संयम है।

परिहार विशुद्धि संयम किसके?

तीसवासंत-मुत्तम-भोयाणि भुंजिदूण गिहत्थो जो।
तित्थयर-पादमूले, वासपुधत्तं पढेदि पुणो॥88॥

सुह-परिहारविसुद्धी, संजमो तस्स दु महातवस्सिस्स।
णियमा विवज्जिदो सो, तेजाहार-समुग्घादादु॥89॥ (जुम्मं)

जो गृहस्थ तीस वर्षों तक उत्तम भोगों को भोगकर पुनः तीर्थङ्कर के पादमूल में वर्ष पृथक्त्व अध्ययन करता है, उस महातपस्वी के शुभ परिहारविशुद्धि संयम होता है। वह परिहार विशुद्धि संयमी नियम से तैजस समुद्घात और आहारक समुद्घात से रहित होता है।

परिहार विशुद्धि संयम के साथ विरोध

मणपज्जयणाणं णो, तह पढमोवसमसम्मत्तं णेव।
परिहारविसुद्धिसंजमेण, सह कत्थवि कयावि खलु॥90॥

परिहारविशुद्धि संयम के साथ कहीं भी, कभी भी मन:पर्यय ज्ञान व प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं होता।

परिहारविशुद्धि कहाँ

पमत्तापमत्त-विरदठाणेसु परिहारविसुद्धी खमो।
णेव सम्भवो अमाइ पुण्णमिअंगोव्व इदरेसुं॥91॥

प्रमत्तविरत व अप्रमत्तविरत गुणस्थानों में ही परिहारविशुद्धि संयम शक्य है। अन्य गुणस्थानों में वह ऐसे ही शक्य नहीं है जैसे अमावस्या की रात्रि में पूर्ण चन्द्रमा।

परिहारविशुद्धि संयम काल

परिहारविसुद्धीए, यालो चिय अडतीस-वासहीणो।
पुव्वकोडी जाणेज्ज, णाणीजणा जिणागमेणं॥92॥

ज्ञानीजनों को जिनागम से परिहारविशुद्धि संयम का काल अड़तीस वर्ष हीन पूर्वकोटि जानना चाहिए।

कइवया आइरिया दु, सोलसवासहीणपुव्वकोडी य।
वा बावीसवासूण-पुव्वकोडी अवि मण्णंते॥93॥

कुछ आचार्य परिहारविशुद्धि संयम का काल सोलह वर्षों से हीन पूर्वकोटि और कोई बाईस वर्षों से हीन पूर्वकोटि भी मानते हैं।

परिहारविशुद्धि संयत के लेश्या

पायो सुहलेस्सा णिच्चं परिहारविसुद्धि-संजदाणं।
णेव पावेदि णियमा, णिरयाइदुग्गदिं जोगी हु॥94॥

परिहारविशुद्धि संयतों के प्राय: नित्य शुभ लेश्या होती है। वे योगी नियम से नरक आदि दुर्गति को प्राप्त नहीं करते।

सूक्ष्मसाम्पराय संयम

गुणट्ठाणम्मि जस्सिं, सुहुम-उदयो लोह-संपरायस्स।
तत्थ दसम-ट्ठाणम्मि, सुहुम-संपराय-संजमो दु॥95॥

जिस गुणस्थान में लोभ साम्पराय (कषाय) का सूक्ष्म उदय होता है, उस दसवें गुणस्थान में सूक्ष्मसाम्पराय संयम होता है।

सूक्ष्म साम्पराय किसके

सुहुम-संपराय-गुणट्ठाणम्मि उवसामगो खवगो वा।
जदि खवगा तो णियमा, लहंति मोक्खं तम्मि भवम्मि॥96॥

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में उपशामक अर्थात् उपशम श्रेणी वाले मुनिराज होते हैं या क्षपक अर्थात् क्षपक श्रेणी वाले मुनिराज होते हैं। यदि क्षपक मुनि हैं तो वे नियम से उसी भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

सूक्ष्मसाम्पराय संयत के लेश्या

सुहुमसंपरायम्मि दु, सुक्कलेस्सारूव-परिणामा खलु।
तत्तो अग्गे णेव दु, सम्भवो सुहुमलोहुदयो वि॥97॥

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में निश्चय से शुक्ल लेश्या रूप परिणाम होते हैं। उससे आगे सूक्ष्म लोभ का उदय भी सम्भव नहीं है।

यथाख्यात संयम

जहा अक्खादो दु जिण-समयम्मि संजमो दु जहक्खादो।
मोहणिज्जस्स हि एग-पइडि-उदयो असक्को अत्थ॥98॥

जिनागम में जैसा कहा गया है वही यथाख्यात संयम है। यहाँ मोहनीय कर्म की एक भी प्रकृति का उदय शक्य नहीं है।

यथाख्यात संयम का काल

जह अप्पस्स सहावो, जहक्खाद-संजमो तम्मि वसणं।
उवसामगस्स संजम-यालो चिय अंतोमुहुत्तो॥99॥

आत्मा का जैसा स्वभाव है, उसी में वास करना यथाख्यात संयम है। उपशामक मुनिराज के लिए यथाख्यात संयम का काल अन्तर्मुहूर्त है।

किंचिमुहुत्तजुत्तट्ठ-वासहीण-कोडिपुव्वो खवगाण।
जहक्खादस्स विज्जंतस्स यालो तियठाणेसुं॥100॥

क्षपक मुनिराजों के लिए तीनों (क्षीण मोह, सयोग केवली, अयोग केवली) गुणस्थानों में विद्यमान यथाख्यात संयम का काल कुछ अंतर्मुहूर्त सहित आठ वर्ष कम एक कोटिपूर्व है।

यथाख्यात संयम किसके

जहक्खादो दु सक्को, छउमत्थाणं तहा केवलीणं।
उवसंतादो णियमा, अजोगंत-मिमो संजमो दु॥101॥

छद्मस्थों तथा केवलियों के यथाख्यात संयम शक्य है। यह संयम नियम से उपशान्त मोह से अयोग केवली गुणस्थान तक होता है।

संयम प्राप्ति योग्य काल

तिरियो देससंजमं, बेमास-मुहुत्त-पुधत्तस्सुवरि य।
लहदे आहो तिपक्ख-तिदिवसंतोमुहुत्तस्सुवरि॥102॥

तिर्यञ्च जीव दो मास और मुहूर्त पृथक्त्व ऊपर अथवा तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्त के ऊपर देशसंयम प्राप्त कर सकता है। (ये दोनों क्रमशः दक्षिण प्रतिपत्ति और उत्तर प्रतिपत्ति हैं।)

अंतोमुहुत्तहियेसु, अट्ठवस्सेसु गदेसु गब्भादो।
सयलं वियलं मणुओ, लहदि दक्खिण-पडिपत्तीए॥103॥

मनुष्य गर्भकाल से अन्तर्मुहूर्त से अधिक आठ वर्षों के व्यतीत हो जाने पर सकल संयम व विकल संयम को प्राप्त कर सकता है। यह दक्षिण प्रतिपत्ति से जानना चाहिए।

अट्ठवासेसु गदेसु, पावेदि दुविहसंजमं मणुस्सो।
उत्तर-पडिपत्तीए, संपइ दोण्णि चिय गहणीयं॥104॥

मनुष्य आठ वर्षों के बीत जाने पर सकल संयम व देशसंयम प्राप्त कर सकता है। ऐसा उत्तर प्रतिपत्ति से जानना चाहिए। वर्तमान में दोनों ही प्रमाण ग्राह्य हैं।

संयत के भेद

संजदो पंचविहो दु, पुलागो वकुसो कुसीलो णेयो।
णिग्गंथो सिणादगो, मोक्खमग्गारूढो पुज्जो।।105।।

मोक्षमार्ग पर आरूढ़ पूज्य संयत पाँच प्रकार के होते हैं–पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ व स्नातक।

पुलाक

सालीए रत्तिमा व, संजमे दोसा सक्का पुलागो।
मूलगुणे दोसजुदो, उत्तरगुण-भावणा-रहिदो।।106।।

धान्य में लालिमा के समान पुलाक मुनिराज के संयम में दोष शक्य हैं। जो मूलगुण में दोषों से सहित हैं और उत्तरगुण की भावना से रहित हैं, वे मुनि पुलाक कहलाते हैं।

बकुश

दुविहो वउसो णेयो, सरीर-उवयरणाणं भेयादो।
देहसक्कारसेवी, दिवसे सुवदि सरीर-वउसो।।107।।

शरीर व उपकरण के भेद से बकुश दो प्रकार के जानने चाहिए। जो देह का संस्कार करने वाला होता है और दिन में सोता है वह शरीर बकुश है।

उवयरणासत्तो जो, विसेस-सुंदर-उवयरणाकंखी।
विविहपरिग्गहजुत्तो, उवयरण-बउसो साहू सो।।108।।

जो साधु उपकरण में आसक्त रहते हैं, विशेष सुन्दर उपकरणों के आकांक्षी हैं, विविध परिग्रह से युक्त हैं वे उपकरण बकुश हैं।

कुशील

दुविहो कुसीलसाहू, पडिसेवणा-कसाय-भेयादो।
चरियमोहोदयादो, दोसो सम्भवो संजमम्मि॥109॥

प्रतिसेवना और कषाय के भेद से कुशील साधु दो प्रकार के हैं। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से संयम में दोष सम्भव हैं।

प्रतिसेवना कुशील

मूलगुण-अविराहगो, उत्तरगुण-विराहगो चिय कयाइ।
पडिसेवणाकुसीलो, भावलिंगी णमंसणिज्जो॥110॥

जो मूलगुणों की विराधना नहीं करते किन्तु कदाचित् उत्तर गुणों की विराधना करते हैं वे भावलिङ्गी प्रतिसेवना कुशील नमस्करणीय हैं।

कषाय कुशील

सव्वकसायजिदो दु, संजलणाहीणो मेत्तं जो सो।
कसायकुसीलो जाण, अत्तपणीद-जिणसत्थेहिं॥111॥

जिन्होंने सभी कषायों को जीत लिया है, मात्र सञ्ज्वलन कषाय के आधीन हैं वे आप्त प्रणीत जिनशास्त्रों से कषाय कुशील जानने चाहिए।

निर्ग्रन्थ

अंतोमुहुत्तपच्छा भाजगो केवलदंसणणाणाण।
वा कसायहीणो जो, सो णिग्गंथो वंदणीयो॥112॥

जो अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् केवलदर्शन व केवलज्ञान के भाजक हैं अथवा कषाय से हीन हैं वे अभिवन्दनीय निर्ग्रन्थ हैं।

निर्ग्रन्थों के भेद

णिग्गंथो दुविहो एयारसम-ठाणवत्ति-उवसामगा।
खीणमोहवत्ती तह, खवगा लहंति सिवं णियमा॥113॥

निर्ग्रन्थ दो प्रकार के हैं—ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती क्षपक। क्षपक नियम से मोक्ष प्राप्त करते हैं।

स्नातक

सिणादगो अरिहंतो, चदुघादि-कम्मणिम्मुक्को णेयो।
सजोगो वा अजोगो, दुविह-केवली वीदरायी॥114॥

चार घातिया कर्मों से रहित अरिहन्त जिन स्नातक जानने चाहिए। वे वीतरागी केवली दो प्रकार के हैं—सयोग केवली व अयोग केवली।

किनके कौन सा संयम?

सामाइयं च छेदोवट्ठावणं पुलाग-वउसाणं च।
पडिसेवणाकुसील-समणाणं पि बे संजमो हु॥115॥

पुलाक व बकुश मुनिराजों के सामायिक व छेदोपस्थापना संयम होता है। प्रतिसेवना कुशील श्रमणों के भी यही दो संयम होते हैं।

कसाय-कुसील-जदीण, जहक्खाद-रहिदो चदुसंजमो हि।
ण्हादग-णिग्गंथाणं, जहक्खादसुद्धि-संजमो य॥116॥

कषाय कुशील यतियों के यथाख्यात संयम से रहित चार संयम (सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि व सूक्ष्म साम्पराय संयम) होते हैं। स्नातक और निर्ग्रन्थों के एक यथाख्यात शुद्धि संयम ही होता है।

संयतों के उत्कृष्टतः ज्ञान

उक्कस्सेण दसपुव्व-जाणगा चिय पुलागवउस-समणा।
पडिसेवणाकुसीला, सव्वा सया भावलिंगी हि॥117॥

पुलाक, बकुश व प्रतिसेवना कुशील श्रमण उत्कृष्ट से दस पूर्व के ज्ञाता होते हैं। ये सभी सदा ही भावलिंगी होते हैं।

कसाय-कुसील-समणा, णिग्गंथा चिय चउदस-पुव्वधरा।
उक्कस्सेणं च णवरि, ण्हादगा सय केवलणाणी॥118॥

कषाय कुशील श्रमण और निर्ग्रन्थ उत्कृष्ट से चौदह पूर्व के धारी होते हैं जबकि विशेषता यह है कि स्नातक सदा केवलज्ञानी होते हैं।

संयतों के जघन्यतम ज्ञान

जहण्णेणं आयार-वत्थु-जाणग-पुलगो णवरि अण्णा।
ण्हादगवज्जिदा अट्ठ-पवयण-मादु-जाणग-समणा॥119॥

पुलाक श्रमण जघन्य से आचार-वस्तु प्रमाण के ज्ञाता होते हैं, जबकि विशेषता यह है कि स्नातकों को छोड़कर अन्य (बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ) अष्ट प्रवचन माता के ज्ञाता होते हैं।

संयतों के लेश्या

पुलागस्स तिण्णिसुहा, बउस-पडिसेवणाणं छल्लेस्सा।
कसायकुसीलस्स तह, अंतिम-चदु-लेस्सा भणिदा य॥120॥

पुलाक श्रमण के तीन शुभ लेश्या, बकुश व प्रतिसेवना कुशील के छह लेश्या तथा कषाय कुशील श्रमणों के अन्तिम चार लेश्या कही गई हैं।

सुहुम-संपरायस्स हु, धारगाण मेत्तं सुक्कलेस्सा हि।
ण्हादग-णिग्गंथाण वि, सुक्कलेस्सा य विआणेज्जा॥121॥

सूक्ष्म साम्पराय चारित्र के धारकों की मात्र शुक्ल लेश्या ही होती है। स्नातक व निर्ग्रन्थ मुनिराजों की शुक्ल लेश्या ही जाननी चाहिए।

संयतों के उपपाद स्थान

आणिग्गंथ-समणो य, पढम-सोहम्मणागे जहण्णेण।
उक्कस्सेण पुलागा, सहस्सारे उप्पज्जंते॥122॥

निर्ग्रन्थ तक अर्थात् पुलाक, बकुश, कुशील व निर्ग्रन्थ (उपशामक निर्ग्रन्थ) जघन्य से प्रथम सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हो सकते हैं। उत्कृष्ट से पुलाक श्रमण सहस्रार स्वर्ग में उत्पन्न हो सकते हैं।

बउस-पडिसेवणा-मुणिवरा अच्चुदे सोलसमे सग्गे।
सव्वट्ठसिद्धीए हु, कसायकुसीला णिग्गंथा॥123॥

बकुश व प्रतिसेवना कुशील मुनिराज उत्कृष्ट से सोलहवें अच्युत स्वर्ग में एवं कषाय कुशील व (उपशामक) निर्ग्रन्थ मुनिराज उत्कृष्ट से सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हो सकते हैं।

ण्हादग-केवलणाणी, णियमेण पप्पोदि णिव्वाण-पदं।
भुंजदि णिच्चं बाहा-रहिद-मप्पुप्पण्ण-सोक्खं च॥124॥

केवलज्ञानी स्नातक मुनिराज होते हैं। वे नियम से निर्वाण पद प्राप्त करते हैं। वे नित्य, बाधा रहित, आत्मोत्पन्न सुख को भोगते हैं।

संयम का फल समाधि

संजमसाहणाइ वर-फलं पत्ती परमसमाहीइ सा।
सल्लेहणाइ सक्का, तं विणा संजम-णिरट्ठगो॥125॥

संयम साधना का उत्तम फल परम समाधि की प्राप्ति है। और वह सल्लेखना से शक्य है, उसके बिना संयम निरर्थक है।

सल्लेखना कैसे?

सम्भवो सल्लेहणा, उहय-कसणेण काय-कसायाणं।
काय-कसणेण मेत्तं, सम्मं-सल्लेहणा कहं दु॥126॥

काय व कषाय दोनों के कर्षण से सल्लेखना सम्भव है। मात्र काय के कर्षण से सम्यक् सल्लेखना कैसे सम्भव हो सकती है?

संयम विशुद्धि में कारण-भावना

मित्तिभावो सव्वेसु, पमोदो गुणीसु करुणा दुहीसुं।
विवरीयवित्ति-जणेसु, मज्झत्थ-भावो पसंसो य॥127॥

सभी प्राणियों में मैत्री भाव, गुणिजनों में प्रमोदभाव, दुःखीजनों में करुणा और विपरीत वृत्ति वाले लोगों में माध्यस्थ भाव प्रशंसनीय है।

समत्तथिरिमाइ अणिच्चाइ-भावणं चिंतेज्ज बुद्धीइ।
तं विणा संभवं णो, थेज्जं वेरग्ग-संजमाण॥128॥

समत्व भाव की स्थिरता के लिए बुद्धिपूर्वक अनित्यादि भावना का चिन्तन करना चाहिए। उस अनित्यादि भावना के बिना वैराग्य व संयम की स्थिरता सम्भव नहीं है।

सवरकल्लाणणिमित्तं, भावेज्ज बंधिदुं तित्थपइडिं दु।
दंसणविसोहि-आइं, सोलसभावणं जमेणं सह॥129॥

परकल्याण के निमित्त तीर्थङ्कर प्रकृति के बन्ध के लिए संयमपूर्वक दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावना भानी चाहिए।

साहिदुं सल्लेहणं, पालेदुं संजमं च णिद्दोसं।
धिदि-आइ-पंचभावा, भाविदव्वा संजदेहि सय॥130॥

सल्लेखना की निर्दोष साधना और संयम के निर्दोष पालन के लिए संयतों को सदा धृति आदि पाँच भावना भानी चाहिए।

उवसग्ग-परीसहेसु, कसायं समेदुं धिदिभावणं हि।
धरेज्ज अधीरो पडदि, दुग्गदीइ असंजमभावादु॥131॥

उपसर्ग व परीषहों में कषायों के शमन के लिए धृति भावना धारण करनी चाहिए। अधीर व्यक्ति असंयम भाव से दुर्गति में पतित होता है।

धिदिभावो देदि सया, सोढुं सत्तिं च असुहकम्माइं।
संजदाणं हु विसोहि-कारगो तं भावेज्ज धिदिं॥132॥

धृति भावना सदा अशुभ कर्मों को सहन करने की शक्ति देती है। वह धृतिभावना संयतों के लिए विशुद्धिकारक है। अतः धृतिभावना भानी चाहिए।

सुदभावणाइ समणो, थावदि समचित्तं धम्मज्झाणे।
ताए विणा हु चित्तं, सव्वदा चंचुर-मक्कडोव्व॥133॥

श्रुतभावना से श्रमण धर्मध्यान में अपना चित्त स्थिर करता है। उसके बिना चित्त सदा बन्दर के समान चञ्चल रहता है।

पढम-करण-चरण-दव्व-अणुजोगाणं सुह-चिंतणेणं च।
अज्झयणज्झावणेण, सगचित्तं विसुज्झेज्ज सया॥134॥

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के शुभ चिन्तन से, अध्ययन और अध्यापन से अपने चित्त को सदा विशुद्ध करना चाहिए।

सग-वेरग्ग-सुभावो, वड्ढदि एगत्त-भावणा-बलेण।
भवतणभोय-विरत्ती, सुहायरोव्व सुक्कपक्खस्स॥135॥

एकत्व भावना के बल से निज वैराग्य का भाव वृद्धिंगत होता है एवं शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति वृद्धिंगत होती है।

एगत्तभावणाए, चित्तं सुथिरं विगलेदि मोहं च।
तादो जदीण विउला, णिज्जरा सुहासुहकम्माण॥136॥

एकत्व भावना से चित्त स्थिर होता है, मोह गलित होता है। उससे यतियों के शुभ व अशुभ कर्मों की विपुल निर्जरा होती है।

एगत्तभावणाए, सम्भवो तच्चचिंतणं समणाण।
संवरेण उदीरणा, अविवागी णिज्जरा वि तहा॥137॥

एकत्व भावना से श्रमणों के तत्त्वचिन्तन सम्भव है। उससे संवर पूर्वक अविपाकी निर्जरा तथा उदीरणा भी सम्भव है।

स-सुद्ध-सहज-सहावं, पावंति सत्तभावणाए मुणी।
समणाण पाणोव्व सा, ताए विणा संजमो णेव॥138॥

सत्वभाव से मुनिराज अपने शुद्ध सहज स्वभाव को प्राप्त करते हैं। वह सत्व भावना श्रमणों के लिए प्राण के समान है, उसके बिना संयम नहीं होता।

सव्वजीवा पडि दया-जुदा मिदुपरिणामा समणाणं दु।
उजुभावेहिं जोगी, वड्ढेदि अणुकंपाभावं॥139॥

श्रमणों के सभी जीवों के प्रति दया से युक्त मृदु-कोमल-परिणाम होते हैं। ऋजुभावों से योगी अनुकम्पा भाव वृद्धिगत करता है।

णिरीहवित्तीए सय, भावेज्ज तवभावणं संजदा हु।
कम्मं खयिदुं दुविहो, सुतवो अग्गीव मणिज्जेदि॥140॥

संयतों को निरीहवृत्ति से सदा तप भावना भानी चाहिए। कर्मों के क्षय के लिए दो प्रकार के सम्यक् तप अग्नि के समान माने जाते हैं।

णेव सम्भवा कया वि, सुतवभावणा विणा संजमेणं।
खीरेण विणा घिदं व, पुप्फं विणा तस्स गंधोव्व॥141॥

संयम के बिना तप भावना कदापि उसी प्रकार सम्भव नहीं है, जिस प्रकार दुग्ध के बिना घृत और पुष्प के बिना उसकी गन्ध सम्भव नहीं है।

तवस्सीणं पाणोव्व, तवो बहिरो अब्भंतरो णेयो।
णिव्विअप्प-धम्म-सुक्क-झाणाइं सम्भवो ताणं॥142॥

तपस्वियों के लिए बाह्य तप व अभ्यन्तर तप प्राण के समान जानने चाहिए। उन संयतों के ही निर्विकल्प धर्मध्यान व शुक्लध्यान सम्भव है।

शुद्धोपयोग में शुद्धात्मानुभूति

सुद्धप्पाणुभूदिं हु, लहंति संजदा सुद्धुवजोगम्मि।
सा सगप्पाणुभूदी, बीयं व लहिदुं सिद्धत्तं॥143॥

शुद्धोपयोग में संयत शुद्धात्मानुभूति प्राप्त करते हैं। वह स्वात्मानुभूति सिद्धत्व प्राप्त करने के लिए बीज के समान है।

अशुभ भावना सहित संयत की दुर्गति

संजदा णो भावंति, उत्तभावणं विसुद्धभावेहिं।
असुहभावणं किच्चा, मरित्तु सुरदुग्गदिं लहंति॥144॥

जो संयत विशुद्धभावों से उक्त भावनाएँ नहीं भाते, वे अशुभ भावना करके मरकर देवदुर्गति प्राप्त करते हैं।

अशुभ भावना के भेद

असुहभावणा पणहा, आसुरी य सम्मोही कंदप्पी।
किव्विसा आभिओगा, दुग्गदि-कारणं णियमेणं॥145॥

अशुभ भावना पाँच प्रकार की है—आसुरी, सम्मोही, कन्दर्पी, किल्विष और आभियोग्य। ये अशुभ भावना नियम से दुर्गति का कारण हैं।

कन्दर्पी भावना

सच्चवदादो हीणो, उवहाससीलो कामासत्तो य।
तिव्वरायी य संजम-उवेक्खगो कंदप्पि-जुत्तो॥146॥

जो सत्यव्रत से हीन, उपहास करने वाला, कामासक्त, तीव्र रागी और संयम का उपेक्षक है, वह कन्दर्पी भावना से युक्त है।

कंदप्पभावणाजुद-जदि-चित्तं ण थिरं धम्मज्झाणे।
जिणभत्ति-सज्झाएसु, गुरुसेवालोयणादीसुं॥147॥

कन्दर्प भावना से युक्त यति का चित्त धर्मध्यान, जिनभक्ति, स्वाध्याय, गुरुसेवा और आत्मदोष-आलोचना आदि में स्थिर नहीं होता।

सम्मोही भावना

कुमग्गगामी कुमग्ग-उवएसगो संजमविराहगो य।
सम्मोहि-जुदो जिणपह-विरोही मूढो मोहेणं॥148॥

जो कुमार्गगामी, कुमार्ग का उपदेशक, संयम का विरोधी, जिनपथ का विरोधी और मोह से मूढ़ है वह सम्मोही भावना से युक्त है।

आसुरी भावना

दरिसित्ता णाणाविह-फलं विज्जं कंखेदि जसकित्तिं।
वड्ढेदि सगपद्दिट्ठं, संकिलेस-परिणामेहिं च॥149॥

कोह-माण-जिम्ह-लोह-कसायेसु लीणो आसुरि-जुत्तो।
ण मुंचदि वइरं कलहकर-तामसिगो दुरायारी॥150॥ (जुम्मं)

जो नाना प्रकार के विद्या व फल को दिखाकर यशकीर्ति की आकाङ्क्षा करते हैं, संक्लेश परिणामों से अपनी प्रतिष्ठा वृद्धिङ्गत करते हैं, क्रोध-मान-माया-लोभ कषायों में लीन रहते हैं, बैर नहीं छोड़ते। कलहकारी, तामसिक और दुराचारी है, वह आसुरी भाव से युक्त जानना चाहिए।

किल्विष भावना

णिंददि जिणदेवं जिण-सत्थं णिग्गंथगुरुं जिणधम्मं।
तिरक्करदि चउसंघं, पावी किव्विसभावजुत्तो॥151॥

जो जिनेन्द्रदेव, जिनशास्त्र, निर्ग्रन्थ गुरु और जिनधर्म की निन्दा करता है, चतुर्विध सङ्घ का तिरस्कार करता है वह पापी किल्विष भाव से युक्त जानना चाहिए।

धरित्ता साहु-भेसं, आजीवं कुणदि भूदिकम्मेहिं।
जोदिसणाणबलेणं, कोत्तिओ मंताभिओगेण॥152॥

छलकवडभावजुत्तो, कुव्वदि उवहासं धम्मिट्ठाणं।
अभिओग-भावणाए, जुत्तो णिंदणीयो साहू॥153॥ (जुम्मं)

जो साधु भेष धारण कर भूतिकर्म, मन्त्राभियोग और ज्योतिष ज्ञान के बल से आजीविका करता है और कौतूहली, छल-कपट भाव से युक्त है, धर्मात्माओं का उपहास करता है, आभियोग्य भावना से युक्त वह साधु निन्दनीय है।

अशुभ भावना युत का उपपाद कहाँ?

एदेहिं भावेहिं, मरिदूणं देवदुग्गदिं लहदे।
संजम-विराहगो खलु, सुइरंतं भमदि संसारे॥154॥

इन आसुरी आदि अशुभ भावों से मृत्यु को प्राप्त कर संयम का विराधक देवदुर्गति प्राप्त करता है और सुचिरकाल तक संसार में परिभ्रमण करता है।

तेहि तेहि भावजुदा, उप्पज्जंते तेसु देवेसु।
कंदप्प-असुर-किव्विस-वाहण-सम्मोहेसु जीवा॥155॥

उन-उन कन्दर्पी आदि भावनाओं से युक्त जीव उन कन्दर्प, असुर, किल्विष, वाहन व सम्मोह देवों में उत्पन्न होते हैं।

संयम माहात्म्य

मिच्छत्त-अंधयारो, णाण-पयास-विघादग-मण्णाणं।
अकम्मण्ण-मसंजमो, एदेसु दुह-दुग्गदि-पदणं॥156॥

मिथ्यात्व अन्धकार है, अज्ञान ज्ञान रूपी प्रकाश का विघातक है, असंयम अकर्मण्य है। इनसे दुःख व दुर्गति में पतन निश्चित है।

पयासेदि सण्णाणं, चित्ते मिच्छ-णासगं सम्मत्तं।
संजमो अप्पगंधो, तिण्णि मोक्ख-णियामग-हेदू॥157॥

सम्यग्दर्शन मिथ्यात्व का नाशक है, सम्यग्ज्ञान चित्त में प्रकाश करता है और संयम आत्मा की गन्ध है, ये तीनों ही मोक्ष के नियामक कारण हैं।

सम्मत्त-मुण्हजलं व, सण्णाणं तहा खार-पदत्थोव्व।
खालिदुं अप्पवसणं, सुसंजमो खालण-लउडोव्व॥158॥

आत्मा रूपी वस्त्र को धोने के लिए सम्यक्त्व ऊष्ण जल, सम्यग्ज्ञान क्षारीय पदार्थ और सम्यक् चारित्र थपकी या पीटना के समान है।

बालवत्थाइ पिदरं, उवदिसदि सिसूणं मोक्खमग्गस्स।
पस्स य बोह चल अहो, एसो मोक्खमग्गुवएसो॥159॥

माता-पिता तो (सन्तानों को) बाल्यावस्था से ही मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं—देखो, भालो (समझो), चलो। अहो! यही तो मोक्षमार्ग का उपदेश है। देखो अर्थात् सम्यग्दर्शन, भालो अर्थात् सम्यग्ज्ञान, चल अर्थात् आचरण करो।

पिदरं गुरुं आगमं, णो भण्णिदूणं कुव्वेदि पावं।
सहंतो अणंत-दुहं, पडदे घोर-भवसायरम्मि॥160॥

जो माता-पिता, गुरु या आगम की ना मानकर पाप करता है, वह अनन्त दुःखों को सहन करते हुए घोर भवसागर में पतित हो जाता है।

णिमज्जदि दुहसायरे, संढोव्व दीहसंसारी सो जो।
कादरो महामूढो, हिदत्थं णो संजमं गहदि॥161॥

जो कायर व महामूर्ख आत्महित के लिए संयम ग्रहण नहीं करता, वह नपुंसक के समान दीर्घ संसारी दुःख सागर में डूबता है।

वागरण-अज्झप्प-सिद्धंतागम-ववहारकुसला जणा।
बहुआ किण्णु णो गहदि, संजमं-मूढसिरोमणी दु॥162॥

इस संसार में व्याकरण, आध्यात्मक, सिद्धान्त आगम एवं व्यवहार कुशल बहुत लोग हैं किन्तु जो संयम ग्रहण नहीं करते वे मूर्ख शिरोमणि हैं।

वर-ओसहिजोगेणं, देहो जह णिरामयो उच्छाही।
तह संजमजोगेणं, सम्मत्ताइ-गुण-जुत्तप्पा॥163॥

जिस प्रकार श्रेष्ठ औषधि के योग से शरीर निरामय और उत्साही होता है, उसी प्रकार संयम के योग से आत्मा सम्यक्त्व आदि गुणों से युक्त होती है।

सक्कराजोगेण जह, तक्कं वा कणगं हवेदि मिट्ठं।
सम्मत्तजुदवदेणं, तह सुही जीवणं पसंसो॥164॥

जिस प्रकार शक्कर के योग से छाछ या आटा मीठा होता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व युक्त व्रत से जीवन सुखी व प्रशंसनीय होता है।

गंधहीणपुप्फं जलहीणतडागं जोदिहीणणयणं।
जह तह णेव पसंसो, रयणत्तयहीणणरदेहो॥165॥

जिस प्रकार सुगन्ध से हीन पुष्प, जल से हीन तालाब और ज्योति से हीन नेत्र प्रशंसनीय नहीं होते, उसी प्रकार रत्नत्रय से हीन मानव देह प्रशंसनीय नहीं होती।

दारेदि किण्हमेहं, पवणं च पुण्णं दुहं दुच्चेट्ठं।
जह तह हंदि संजमो, णस्सेदि भवकारणकम्मं॥166॥

जिस प्रकार हवा काले बादलों को और पुण्य दुःख व दुष्चेष्टा को विदीर्ण कर देता है, उसी प्रकार संयम निश्चय से संसार के कारण स्वरूप कर्मों को नष्ट कर देता है।

मोत्तिअविहीणसिप्पी, पंडिदरहिदसहा जलहीणणदी।
सुसक्कार-रहिद-सुदो, जह तह वदरहिदो सुकुलजो॥167॥

जिस प्रकार मोती से रहित सीप, पण्डित से रहित सभा, जल से रहित नदी, सुसंस्कार से रहित पुत्र होता है, उसी प्रकार व्रतों से रहित श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न व्यक्ति जानना चाहिए।

अस्सिं दुस्समयालो, पावबहुले बहुसद्दणाणी अवि।
संजमाणुमोदणं ण, कुणदि भो भव्वो भद्दणरो॥168॥

तं किं वीहेसि तुमं, छिंदेदुं अणादि-भव-संददिं दु।
धारह वदं संजमं, विमल-भावेहि संकप्पेण॥169॥ (जुम्मं)

इस पाप की बहुलता से युक्त दुःषम काल में बहुत शब्दज्ञानी भी संयम की अनुमोदना नहीं करते। अतः अहो भव्य भद्र नर! तुम अनादि भव सन्तति को छेदने से क्यों डरते हो? तुम निर्मल भावों से सङ्कल्पपूर्वक व्रत व संयम को धारण करो।

जो को अवि भव्वुल्लो, पप्पोदुं संजमं दु आकंखी।
छुहालूव तिसिदोव्व य, भावी भयवदो णेयो सो॥170॥

जो कोई भी भव्य जीव क्षुधातुर या प्यासे के समान संयम को प्राप्त करने का आकाङ्क्षी है उसे भविष्य का भगवान जानना चाहिए।

णो वीहेज्जा किंचिवि, अदियाराइ-दोसादो य जम्हा।
कामट्ठपुरिसट्ठे वि, किं णो होदि णरो असफलो॥171॥

संयम में लगने वाले अतिचार आदि दोषों से किंचित भी नहीं डरना चाहिए। क्या काम या अर्थपुरुषार्थ में भी मनुष्य असफल नहीं होता? अर्थात् असफल होने पर भी जैसे काम या अर्थ पुरुषार्थ को नहीं छोड़ता वैसे ही संयम पालन की असफलता के डर से उसे छोड़ना नहीं चाहिए; संयम को स्वीकार कर उसका पालन करना चाहिए।

पणकल्लाणे दिक्खा, तह जह रयणत्तयम्मि सण्णाणं।
संजमेण तित्थाणं, पंचकल्लाणं पसिद्धं दु॥172॥

जिस प्रकार रत्नत्रय में सम्यग्ज्ञान है, उसी प्रकार पञ्च-कल्याणक में दीक्षा कल्याणक है। संयम से ही तीर्थङ्करों के पञ्चकल्याणक लोक में प्रसिद्ध हैं।

मूलेणं विणा रुक्ख-विड्ढी, णेव जह तह संजमेणं।
विणा णप्पगुणविड्ढी, तं लहसु संजमं जदणेण॥173॥

जिस प्रकार मूल के बिना वृक्ष की वृद्धि नहीं हो सकती, उसी प्रकार संयम के बिना आत्मगुणों की वृद्धि सम्भव नहीं है। अतः यत्नपूर्वक संयम को धारण करो।

णो वीहेज्जा भव्वो, संजमं धारह जम्हा विणा तं।
ण मुत्ती मुत्तिमग्गो, भणेज्ज संतिसायर-सूरी॥174॥

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी मुनिराज कहा करते थे–हे भव्यजीव! डरो मत, संयम धारण करो क्योंकि संयम धारण किए बिना न मोक्षमार्ग है और न मोक्ष।

समपुरिसट्ठबलेणं, जो धरदि संजमं अस्सिं याले।
वीरेसु महावीरो, तित्थयरकुलजो सो णेयो॥175॥

जो भव्य जीव इस काल में भी अपने पुरुषार्थ के बल से संयम धारण करता है वह वीरों में महावीर और तीर्थङ्कर के कुल में उत्पन्न जानना चाहिए।

संजमबलेण जयित्तु, कम्मं लहेसु सासयसिवरज्जं।
चक्केण चक्की रिउं, जयित्तु पप्पोदि छक्खंडं॥176॥

जिस प्रकार चक्रवर्ती चक्र के द्वारा शत्रुओं को जीतकर षट्खंड का राज्य प्राप्त करता है, उसी प्रकार संयम के बल से कर्मों को जीतकर शाश्वत मोक्ष साम्राज्य को प्राप्त करो।

जे के वि संजदा वा, धारिस्संति धारीअ संजमं च।
ते सव्व-संजदा हं, वंदामि परमविसुद्धीए॥177॥

जो कोई भी जीव संयमी हैं, अथवा जिन्होंने संयम धारण किया और संयम धारण करेंगे, उन सभी संयतों की मैं परमविशुद्धिपूर्वक वन्दना करता हूँ

अन्तिम मङ्गलाचरण

वंदिय सिरी उसहाइ-जिणा गणहरा य उसहसेणादी।
सुदकेवली सव्व-जदिवरा अक्खुण्ण-परंपराइ॥178॥

चरियचक्किं सिरिसंति-सायरं महातवसि-पायसिंधुं।
सूरि-जयकित्तिं देस-भूसण-माइरियं पणमामि॥179॥ (जुम्मं)

श्री ऋषभदेव आदि जिनवरों, श्रीवृषभसेन आदि सभी गणधरों, सभी श्रुतकेवलियों, सभी मुनिराजों की वन्दना करके इसी अक्षुण्ण परम्परा के चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी मुनिराज, महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज, आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज एवं आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

पच्चक्ख-परमुवयारि-गुरुं मज्झ विज्जाणंदं सूरिं।
वंदेमि णाणमुत्तिं, तिसंझासु जोगत्तयेण॥180॥

जिणसासणुण्णदियरं, सिदपिच्छिधारगं तह जुगपुरिसं।
सिद्धंतचक्किं खवगरायसिरोमणिं रट्ठसंतं॥181॥

जिनशासन उन्नतिकर, युगपुरुष, श्वेतपिच्छीधारक सिद्धान्त चक्रवर्ती, क्षपकराजशिरोमणि, राष्ट्रसन्त, ज्ञानमूर्ति, मेरे प्रत्यक्ष परमोपकारी, गुरुवर आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज की तीनों सन्ध्याकालों में त्रियोग से वन्दना करता हूँ।

ग्रन्थकार की लघुता

गुरुकिवाए विरइदो, सवरहिदत्थ-मप्पबुद्धीइ मए।
खमंतु मे सोहयंतु, अभेदरयणत्तय-धारगा॥182॥

मुझ अल्पबुद्धि के द्वारा, स्वपर हित लिए गुरुकृपा से यह ग्रन्थ रचा गया। अभेदरत्नत्रयधारक इसको संशोधित करें एवं यदि कोई त्रुटि हो गई हो तो, मुझे क्षमा करें।

ग्रन्थ-प्रशस्ति

ख-परमेट्ठि-अत्थिकाय-परमप्प-वीरद्धम्मि अंकक्कमे।
वसुणंदिसूरिणा मइ, पुण्णो वइसाहपुण्णिमाइ॥183॥

आकाश (0), परमेष्ठी (5), अस्तिकाय (5), परमात्मा (2) अङ्क क्रम से 2550 वीर निर्वाण संवत् में वैशाख पूर्णिमा के दिन मुझ आचार्य वसुनन्दी के द्वारा यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

॥ समत्तो गंथो ॥

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

(प्राकृत साहित्य)			
क्र.सं.	नाम	क्र.सं.	नाम
1.	प्राकृत वाणी भाग-1	2.	प्राकृत वाणी भाग-2
3.	प्राकृत वाणी भाग-3	4.	प्राकृत वाणी भाग-4
5.	प्राकृत वाणी भाग-5	6.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)
7.	अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)	8.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)
9.	जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)	10.	जदि-किदि-कम्मं(यति कृतिकर्म)
11.	णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)	12.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)
13.	तच्चसारो (तत्त्व सार)	14.	धम्म सुत्तं (धर्म सूत्र)
15.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)	16.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)
17.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)	18.	विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)
19.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)	20.	अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)
21.	णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)	22.	मूल-वण्णो (मूल वर्ण)
23.	मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)	24.	विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)
25.	विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)	26.	समवसरण सोहा (समवसरण शोभा)
27.	वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)	28.	अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)
29.	कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)	30.	को विवेगी (विवेकी कौन)
31.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)	32.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)
33.	रयणकंडो (सूक्ति कोश)	34.	धम्मस्स सुत्ति संगहो
35.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)	36.	खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)
37.	सिरि सीयलणाह-चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)	38.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)
39.	समणायारो (श्रमणाचार)	40.	असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक रोहिणी चरित्र) (महाकाव्य)
41.	लोगुत्तरविट्टी (लोकोत्तर वृत्ति)	42.	समणभावो (श्रमण भाव)
43.	झाणसारो (ध्यानसार)	44.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)
45.	जिणवयणसारो (जिनवचनसार)	46.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)
47.	पसमभावो (प्रशम भाव)	48.	सम्मेदसिहर महप्पुरो (सम्मेदशिखर महात्म्य)

49.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त्त)	50.	विणयसारो (विनय सार)
51.	तव-सारो (तप सार)	52.	भाव-सारो (भाव सार)
53.	दाण-सारो (दान सार)	54.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)
55.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)	56.	णाण-सारो (ज्ञान सार)
57.	णीदि-सारो (नीति सार)	58.	आयंस-सिक्खाविही (आदर्श शिक्षाविधि)
59.	दंसण-परिक्खा (दर्शन परीक्षा)	60.	महाणुभावो (महानुभाव)
61.	उववासो (उपवास)	62.	संजम-सारो (संयमसार)
63.	सम्मत्त-सारो (सम्यक्त्व सार)	64.	सज्जण-वयण-विलासो (सज्जन वचन विलास)
65.	विदु-वाणी	66.	सूदग-पादग-णिण्णय-विही (सूतक-पातक निर्णय विधि)
67.	सगसरूवावलोयणं (स्वस्वरूपावलोकन)	68.	सुद्धप्प-थुदी-(शुद्धात्म स्तुति)

टीका ग्रंथ

1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र (संस्कृत)

इंग्लिश साहित्य

1.	Inspirational Tales Part& 1&2	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य

1.	इष्टोपदेश (मुक्ति का वाग्दान)	2.	प्रश्नोत्तर रत्नमालिका (बोधि वृक्ष)
3.	सामायिक पाठ (शिवपथ का रथ)	4.	समाधि तंत्र (स्वात्मोपलब्धि)
5.	रत्नकरण्ड श्रावकाचार (श्रावकधर्म-संहिता)	6.	ज्ञानांकुश (तत्त्व चिंतन के सूत्र)

प्रवचन साहित्य

1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू

13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17
31.	गुरुत्तं भाग 18	32.	चूको मत
33.	जय बजरंगबली	34.	जीवन का सहारा
35.	ठहरो! ऐसे चलो	36.	तैयारी जीत की
37.	दशामृत	38.	धर्म की महिमा
39.	ना मिटना बुरा है न पिटना	40.	नारी का धवल पक्ष
41.	शायद यही सच है	42.	श्रुत निर्झरी
43.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा	44.	सीप का मोती (महावीर जयंती)
45.	स्वाती की बूँद		

हिंदी गद्य रचना			
1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म

31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1.	अक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना

1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दु:खों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	श्री समवशरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान
11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान
17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान
21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना
27.	अभिनव सिद्धचक्र मंत्रार्चना		

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि

13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्‌भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्‌मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी जी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्धयुपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)
27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)	32.	वसुऋद्धि
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

प्रथमानुयोग साहित्य			
1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)
3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)

7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र
31.	रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बरैया)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान
   - नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)

2.	श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान		
3.	श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक		
4.	शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी) • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)		
5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु संबुध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		

जिणवाणी–थुदी

महुरं विसदं पिय–गंभीरं
हिदयरं मिदं सिरिजिणवाणिं।

अणेगंतमयं सिआवायमयं
णिरुवमं समं सिरिजिणवाणिं।

जिणसव्वंगादो णिस्सरिदं
भविचित्तहरं सिरिजिणवाणिं।

बारस–अंगेहिं संजुत्तं
लोएपुज्जं सिरिजिणवाणिं।

कंठादिवचोकारणरहिदं
तयरोयहरं सिरिजिणवाणिं।

जगमंगल्लं जगकल्लाणिं
पणमामि सया सिरिजिणवाणिं।